दस्सापूजाधिकार-विचार

(निष्पक्षता शान्ति तथा प्रेम से मनन करने योग्य)

लेखक :—

" स्फुलिङ्ग "

"सर्वव्यापी"

प्रकाशिका :—

जमनाबाई

जबलपुर।

❀ श्री मल्लिनाथाय नमः ❀

श्री मल्लिसागर दि० जैन ग्रन्थ माला

का

तृतीय–पुष्प

दस्सापूजाधिकार-विचार

लेखक :—

"स्फुलिङ्ग"

प्रकाशिका :—

" जमनाबाई "

जबलपुर ।

यत् संस्कार शतेनापि । ना जातिर्द्विजतां व्रजेत् ॥
सैंकड़ों संस्कार करने पर भी कुजाति शुद्ध नहीं हो सकती ।

यशस्तिलके — सोमदेवः

स्वकीया परकीया वा मर्यादा लोपिनो नराः ।
न माननीयाः किं तेषां तपोवा श्रुत मेवच ॥

रत्नमालायां— "शिवकोटि"

अर्थात्—मर्यादा के लोप करने वाले मनुष्यों के वचन कदापि नहीं मानने चाहियें चाहे वे अपनी समाज के हों और चाहे पर समाज के ।

प्रथम बार १००० | कार्तिक सुदी १५ वीर सं० २४६३ | मूल्य "मनन"

❀ श्रद्धांजलिः ❀

श्री १०८ पूज्य मल्लिसागर जी महाराज

के

चरण कमलों में

जिनकी

कृपा से मेरा यह प्रयास

निर्विघ्न पूर्ण हुआ

"स्फुलिङ्ग"
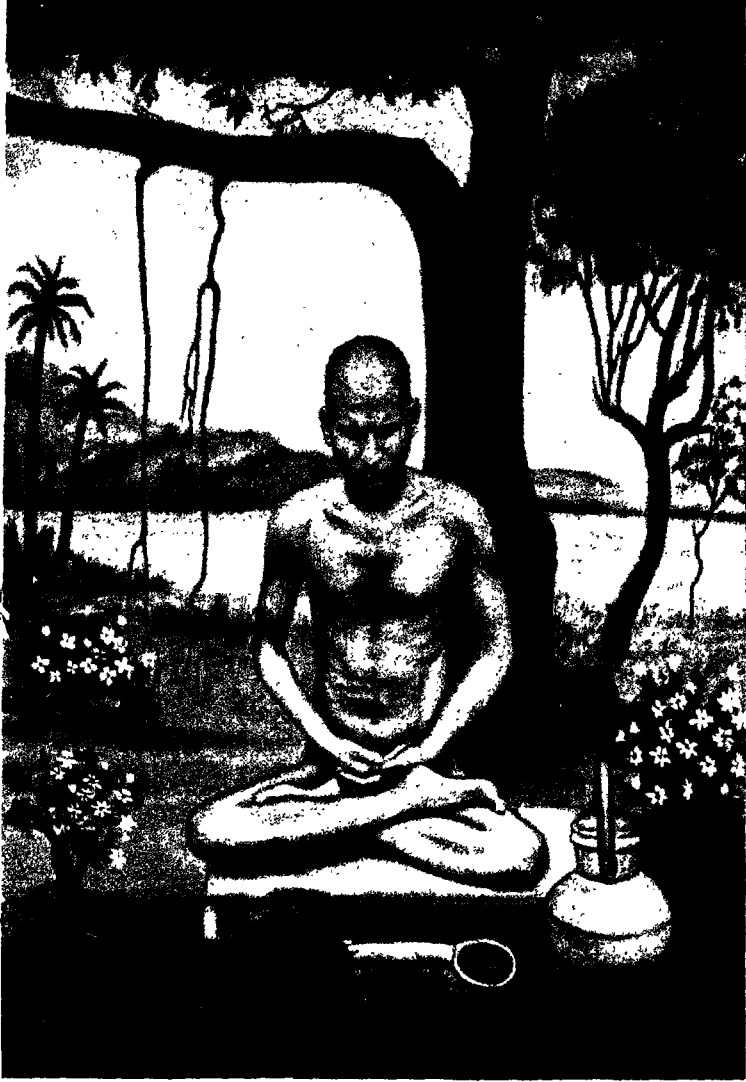
श्री १०८ मुनि मल्लिसागर जी चौमासा मेरठ सम्वत् १९९३ वि०

समर्पण

श्रीमान् जैनधर्म महारथी धर्मवीर धर्मरत्नो-
द्योतक वात्सल्यादि अनेक गुण गणालंकृत

रायसाहब

लाला प्रद्युम्नकुमार जी जैन रईस

सहारनपुर

के

कर कमलों में

लेखक द्वारा यह तुच्छ रचना सादर
समर्पित है ।

"स्फुलिङ्ग"

❀ प्रारम्भिक–निवेदन ❀

"धार्मिक मर्यादा पर दृष्टिपात" शीर्षक एक ट्रैक्ट सहारनपुर की पञ्चायत द्वारा प्रकाशित हुआ है ट्रैक्ट सयुक्तिक एवं निष्पक्ष भाव से लिखा गया है।

परन्तु—

पं० परमेष्ठीदास जी जिन्होंने कि धार्मिक मर्यादाओं पर कुठाराघात करने का व्रत सा लेलिया है इस पुस्तक से अत्यन्त असन्तुष्ट हुए हैं और इसके उत्तर में आपने 'दस्साओं का पूजाधिकार' नामक पुस्तक प्रकाशित कराई है।

इधर उधर के कुछ प्रकरण विरुद्ध उद्धरण उधृत करके पं० परमेष्ठीदास जी ने समझ लिया है कि हमने सहारनपुर की पञ्चायत के ट्रैक्ट का खण्डन कर दिया।

परन्तु—

इस खण्डन से उनकी शास्त्रीय योग्यता का पता अच्छी तरह चल जाता है, सहारनपुर की पञ्चायत ने जो युक्तियां दस्सों की पूजा के विरुद्ध दी हैं वे पं० परमेष्ठीदास जी से खण्डित नहीं हो सकीं इसी का दिग्दर्शन इस छोटे से ट्रैक्ट में कराया जाता है आशा है कि निष्पक्ष पाठक गण वस्तु के स्वरूप को यथार्थ रूप में समझ कर अपने धार्मिक श्रद्धान को दृढ़ करेंगे।

निवेदक :—

"स्फुलिङ्ग"

❀ ॐ ❀

दस्सा पूजाधिकार विचार
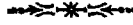
'दस्साओं का पूजाधिकार नामक प्रकरण को प्रारम्भ करते हुए पं० परमेष्ठीदास जी ने सर्व प्रथम पञ्चाध्यायी के—

"सुस्थिति करण नाम परेषां सदनु ग्रहात् ।
भ्रष्टानां स्वपदात्तत्र स्थापनं तत्पदं पुनः ॥

नामक स्थिति करण अङ्ग के लक्षण को उधृत किया है। इस श्लोक के उधृत करने का आप का आशय यह है कि "जो अपने पद से भ्रष्ट होगये हों उन्हें फिर अपने पद में स्थापित करना चाहिये।" परन्तु इस श्लोक से दस्सों का पूजाधिकार सिद्ध नहीं होता क्योंकि **दस्से भ्रष्ट नहीं किन्तु भ्रष्टजात हैं और भ्रष्टजात को मिलाने वाला कोई वाच्य उपर्युक्त श्लोक में नहीं है,** इस लिये इस श्लोक से दस्सों को पूजाधिकार सिद्ध नहीं होता।

दूसरी बात यह भी है कि यह लक्षण स्थिति करण का है अनेक आचार्यों ने स्थिति करण का वर्णन किया है, परन्तु इस अङ्ग के लक्षण से दस्सों के पूजाधिकार का दुराशय निकालना आप ही की समझ की खूबी है। समन्तभद्राचार्य लिखते हैं :—

दर्शनाच्चरणा द्वाऽपि चलतां धर्म वत्स लै ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थिति करण मुच्यते ॥

अर्थात्—सम्यक्त्व और चारित्र से भ्रष्ट होने वाले जीवों को फिर इसी मार्ग में दृढ़ करना स्थिति करण है।

इसी प्रकार प्रबोधसार में :—

परीषहाद्व्रताद्भीतां अप्राप्त श्रुत सम्पदं ।
धर्मात् भ्रस्यन्मतिं साधुं पुनस्तं तत्र रोपयेत् ॥

अर्थात्—जो साधु वा गृहस्थ अपनी अज्ञानता और हीन शक्ति के कारण परीषह और व्रतों के कष्ट न सहने के कारण धर्म से भ्रष्ट होरहे हैं उन्हें फिर उसी मार्ग में लगाना स्थितिकरण है।

इस प्रकार सर्वत्र स्थिति करण का यही लक्षण मिलता है जिसका अर्थ दस्सों की शुद्धि या उनका पूजाधिकार कदापि नहीं है। बृहद्द्रव्य संग्रह में स्पष्ट कहा है :—

"रत्नत्रय धारकस्य चातुर्वर्ण धारकस्य संघस्य मध्ये यदा कोऽपि दर्शन चारित्र मोहोदयेन दर्शनं ज्ञानं चारित्रं वा परित्यक्तुं वाञ्छति तदा **आगमअविरोधेन** यथा शक्त्या धर्म श्रावणेन वा अर्थेन वा सामर्थ्येन केनाप्यु पायेन यद्धरमे स्थिरत्वं क्रियते तद्व्यवहार स्थिति करणं इति" ॥

अर्थात्—रत्नत्रय के धारक चतुर्संघ में से यदि कोई मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका रत्नत्रय से भ्रष्ट होता हो तो उसे **शास्त्र की मर्यादा के अन्तर्गत** धर्मसुनाने या धनादि द्वारा सहायता करने रूप किसी भी उचित मार्ग से धर्म में दृढ़ करना स्थिति करण है । इसी प्रकार धर्म संग्रह, अमितगति श्रावकाचार पुरुषार्थ सिध्युपाय आदि सर्वत्र आचार शास्त्रों में स्थितिकरण का यही लक्षण मिलता है, स्थितिकरण के नाम से दस्सों को पूजा

का अधिकारी बतलाना सर्वथा असंगत है। आगे आप लिखते हैं कि :—

"इतने बड़े नामवाली पुस्तक में न तो कोई शास्त्रीय प्रमाण है और न कोई बुद्धिगम्य तर्क" पृष्ठ—१

पुस्तक में तो प्रमाण भी हैं और बुद्धिगम्य तर्क भी परन्तु "नाऽयं स्थाणो रपराधः यदेनमन्धोन पश्यति।

आप लिखते हैं कि—

"किसी भी जैन शास्त्र में दस्सा बीसा के भेद का कथन है ही नहीं।" पृष्ट १

क्यों पं० जी! जब शास्त्रों में दस्सों बीसों का नाम ही नहीं तब दस्सों के मिलाने का विधान आप किस शास्त्र से बतला रहे हैं? यदि बिना ही शास्त्र प्रमाण के तो बिना शास्त्रीय आज्ञा के आपके वचन कैसे माने जा सकते हैं? और यदि आपका यह फ़र्मान शास्त्रीय है तब "किसी भी शास्त्र में दस्सों बीसों के भेद का कथन नहीं है आपका यह वाक्य स्वतः खण्डित हो जाता है," क्योंकि—

जिस शास्त्र प्रमाण से आप दस्सों के मिलाने का विधान कर रहे हैं कम से कम उस शास्त्र में तो दस्सों का नाम आया ही होगा।

आपका कहना है कि "किसी भी शास्त्र में दस्से बीसों के भेद का कथन नहीं।" मानलो आपने समस्त शास्त्रों को देख लिया हो :—

दस्से बीसों का भेद सनातन है, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों (द्विजों) में यह भेद सर्वत्र पाया जाता है, यह भेद निराधार नहीं है, उच्च कुल वालों अर्थात् द्विजन्मात्रों में से जब

किसी ने कोई विजातीय विवाह अथवा धरेजा करावा करलिया हो तब उसकी संतान दस्सा कही जाती है। शास्त्रों में दस्से का वाचक "जातिसंकर" शब्द अनेक स्थलों पर पाया जाता है और इस प्रकार के जातिसंकर, जातिपतित अकुलीन अर्थात् दस्सों के पूजन का निषेध अनेक जैन ग्रन्थों में है जिन में से कुछ यहां भी उधृत किये जाते हैं।

पहला प्रमाण पूजासार ग्रन्थ

कुलेन जात्या संशुद्धो मित्र बन्ध्वा दिभिशुचिः।
गुरूपदिष्ट मंत्राढ्यः प्राणि बाधादि दुरगः ॥१८॥

अर्थात्—जिसका जातिकुल शुद्ध हो, (दस्सा या जातिसंकर न हो) मित्र बन्धु वान्धव आदि से भी शुचि अर्थात् शुद्ध हो जाति बहिष्कृत पञ्चायत से दण्डित न हो, तथा गुरू के द्वारा पूजा विधि का सीखा हुआ हो और प्राणियों को बाधा पहुंचाने वाला हिन्सक न हो, वही पूजक हो सकता है। इस प्रकार उपरोक्त प्रमाण से दस्सों अर्थात् जाति संकरों को पूजा का निषेध स्पष्ट सिद्ध होता है। श्लोक में आये हुए "कुलेन जात्यादि संशुद्धा शुचिबन्धु सुहृज्जनैः" पद पर निष्पक्षता से विचार कीजिये।

दूसरा प्रमाण धर्म संग्रह श्रावकाचार

जात्याकुलेन पूतात्मा शुचिर्बन्धु सुहृज्जनैः।
गुरूपदिष्ट मंत्रेण युक्तः स्यादेष पूजकः ॥१४३॥

इसका भी अर्थ बिलकुल पूर्वत् ही है श्लोक में आये हुए "जात्याकुलेन पूतात्मा शुचिबन्धु सुहृज्जनैः" पद से जाति पतित

जाति संकर अकुलीन व्यक्ति की पूजा का निषेध बिलकुल स्पष्ट सिद्ध होता है। और भी देखिये :—

तीसरा प्रमाण स्मृतिसार ग्रन्थ

जातिकुल विशुद्धोहि देह संस्कार संयुतः।
पूर्व संस्कार भावेन पूजायोग्यो भवेन्नरः॥ पत्र ७४

अर्थात्—जाति कुल जिसका शुद्ध हो दस्सा या जातिसंकर न हो और देह संस्कार अर्थात् यज्ञोपवीत तिलक आदि से संयुक्त हो और पूजा का पूर्व संस्कार भी उसको हो ऐसा व्यक्ति ही पूजा करने के योग्य है।

इस प्रकार एक दो जगह ही नहीं किन्तु पूजन विधान के समस्त शास्त्रों में दस्सों को पूजा का अनाधिकारी बतलाया है। खेद है कि आपने बिना ही शास्त्रों के परिशीलन किये यह लिखने का दुस्साहस किया कि "किसी भी जैन शास्त्र में दस्सों की पूजा का निषेध नहीं है" **अब आप ध्यान पूर्वक इन शास्त्रीय प्रमाणों को देख लेवें।** धर्म संग्रह

श्रावकाचार और पूजासार इन दोनों ग्रन्थों को आपने अपनी पुस्तक में इनके प्रमाण देकर इनको प्रमाणिक स्वीकृत किया ही है यहां आपको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि पूजासार और धर्म संग्रह श्रावकाचार के जो श्लोक हमने उधृत किये हैं वे पूजकाचार्य के नहीं किन्तु पूजक के ही हैं। इस प्रकार उपरोक्त आगम प्रमाणों से दस्सों की पूजा का निषेध स्पष्ट सिद्ध होता है।

अब आपने जो इधर उधर के २-४ श्लोक उधृत करके दस्सों को पूजन का अधिकार देना चाहा है उन पर विचार किया जाता है—

अपनी दस्सा पूजाधिकार नामक पुस्तक के पृष्ट ५ में आप लिखते हैं:—

संयमो नियमः शीलं, तपो दानं दमो दया।
विद्यन्ते तान्त्विका यस्यां सा जातिः महतीमता॥

अर्थात्—जिस जाति में संयम नियम शील दान तप की प्रवृत्ति पाई जाय वह जाति बड़ी है। इस श्लोक से न मालूम आप दस्सों के पूजाधिकार का अर्थ कैसे निकालना चाहते हैं, दस्से और पूजा का वाचक ही कोई शब्द जब श्लोक में नहीं है तो उससे दस्सों का पूजाधिकार कैसे सिद्ध होसकता है? यह तो आपका तैल की प्राप्ति के लिये बालू का पेलना है, श्लोक का सीधा सच्चा भाव तो यह है कि जिन जातियों में संयम दान शील तप आदि की प्रवृत्ति पाई जाय वे जातियां बड़ी हैं। इस श्लोक को उधृत करके तो अजाकृपाणी न्याय से आपने अपना ही अनिष्ट करलिया क्योंकि दस्सों को पूजा ही नहीं किन्तु मुनियों को दान देने और मुनि बनकर तप करने का भी निषेध है दस्सों के दान देने और मुनि बनने का निषेध निम्नस्थ प्रमाणों से होता है।

दस्से मुनियों को दान नहीं दे सकते

दस्से मुनियों को दान नहीं दे सकते इसका प्रमाण त्रिलोक सार की गाथा नं० ६२४ में निम्न प्रकार से पाया जाता है—

यथाः—

दुब्भाव असुचि सूदग पुप्फ वई जाइ संकरादीहिं
कय दाण विकुव्वत्तं जीवा कुणरेसु जायन्ते॥

अर्थः—"खोटे भाव कर वा अपवित्रता कर सूतक में पुष्पवती के संसर्ग कर वा परस्पर विपरीत कुलनि का मिलने

रूप जाति संकर (दस्सा) ताको आदि देकर संयुक्त जे दान करे हैं बहुरिजे कुपात्रनि में दान करे हैं, ते जीव कुमनुष्यनि विषै उपजे हैं।" इतना ही नहीं यदि मुनियों को मालूम हो जाय हमारा आहार दस्सों के यहां हो गया है तो मुनिराज उसका प्रायश्चित भी लेते हैं। ऐसा सर्वत्र आचार शास्त्रों तथा प्रायश्चित ग्रन्थों में है। आचार सार श्री वीर नन्दि विरचित तथा गुरुदास विरचित प्रायश्चित संग्रह में यह बात स्पष्ट करदी गई है तथा एषण समिति के स्वरूप में स्पष्ट लिखा है-"गर्हित कुल परिवर्ज नोप लक्षिता (चारित्रसार पृष्ठ ७५) अर्थात् पतित कुलों में भिक्षा नहीं करना चाहिये। "जाइ कुल विसुद्धो" जाति कुल विशुद्ध जिसका हो वही अहार लेना चाहिये।

दस्से अर्थात् जाति संकर व्यक्ति मुनि भी नहीं हो सकते

जिस समय आचार्य किसी को दीक्षा देते हैं उस समय उसके जाति कुलका निर्णय अवश्य कर लेते हैं यथाः—

(आचार सारे वीरनन्दि विरचिते)

विशुद्ध कुल गोत्रस्य सद्वृत्तस्य वपुष्मतः।
दीक्षा योग्यत्व माम्नातं सुमुखस्य सुमेधसः ॥ १५९॥
जाति मूर्तिश्च तत्रत्यं लक्षणं सुन्दराङ्गता ॥ १६४ ॥
जात्यादि कानि मानि सप्त विशन्ति परमेष्ठिनां।
गुणा नीप्सुर्भजे दीक्षां १६७

अर्थात्—कुल गोत्र जाति जिसकी शुद्ध है उच्च है वही दीक्षा का अधिकारी है, जाति आदि से योग्य है वही दीक्षा ले सकता है जाति आदि सत्ताईस ऐसे लक्षण हैं जो दीक्षा देने से पहिले देखने

ही चाहियें परन्तु जाति आदि की उत्तमता बिना मुनिव्रत नहीं हो सकता।

और भी देखियेः—आचार सार श्लोक नं० ९

प्राज्ञेन ज्ञातः लोक व्यवहृति मतिना तेन मोहोज्झितेन।
प्राग्वि ज्ञातः सुदेशो द्विज नृपति वणिग्वर्ण वर्योंग पूर्णः॥
भूभृल्लोकाऽविरुद्धः स्वजन परिजनों न्मोचितौ वीतमोहः।
चित्रापस्मार रोगाद्यपगत इति च ज्ञाति संकीर्तनाद्यैः॥९॥

अर्थात्—आर्य देश, राजा और लोक से अविरुद्धता राज द्वारा दण्डित तो नहीं है। कुटुम्बी आदि से आज्ञा प्राप्त किया हुआ है? वीतरागी है या नहीं? ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों उच्च वर्ण वाला है या नहीं? तथा इसमें या इसकी वंश परम्परा में किसी प्रकार का जाति संकीतन अर्थात् जाति संकरता दस्से पन का दोष तो नहीं लगा है? अपस्मार अर्थात् मृगी आदि रोग तो नहीं है ऐसा निर्णय करके ही आचार्य किसी को दीक्षा देते हैं। इस प्रकार उपरोक्त प्रमाणों से यह भले प्रकार सिद्ध हो जाता है कि दस्सों को शास्त्रानुसार न तो पूजन ही का अधिकार है और न मुनियों को दान देने तथा मुनि बनने ही का अधिकार है।

आगे आप लिखते हैं किः—"किसी को जाति मात्र से शुद्ध या अशुद्ध मानना यदि सत्य होजाय तो यह आचार्य वाक्य असत्य हो जायगा कि "गुणैर्सम्पद्यते जातिर्गुण ध्वंसैर्विपद्यते" "अर्थात् गुणों के द्वारा जाति उच्च होती है और गुणों के नष्ट हो जाने पर जाति नष्ट होजाती है।" (पृष्ट ५)

समाधान—

श्री अमित गति आचार्य के इस खण्ड श्लोक को उधृत करके जो आप दस्सों को पूजाधिकारी सिद्ध करना चाहते हैं सो भी आपका छल है — क्योंकि "अभिप्रायान्तरेण प्रयुक्तस्य शब्दस्यार्थान्तर परिकल्प्य दूषणाभिधानं छलं" (रा० वा०) यह छल का लक्षण आपके वाक्यों में पूर्ण रुप से घटित होता है।

इसका स्पष्टी करण निम्न प्रकार है —

अमित गति आचार्य का पूरा श्लोक —

न जातिर्ब्राह्मणी यास्ति नियता काऽपि तात्विकी
गुणे सम्पद्यते जातिः गुणध्वंसैर्विपद्यते ॥

इस प्रकार है – इसका आशय समझने के लिये पहले आप को जाति व्यवस्था के तत्व को समझना होगा।

जैन धर्म ब्राह्मणों (सनातनियों) की तरह केवल जन्म ही से किसी को उच्च नहीं मानता और न आर्यसमाजियों की तरह (नीच कुलमें जन्म लेने पर भी) केवल कर्म ही से किसीको उच्च मानता है, प्रत्युत्—:

"जाति तीर्थ प्रभेदेन द्विविधा : ब्राह्मणादय : ॥
धर्मसंग्रह श्रा० अ० ७ श्लोक २२६

अर्थात्—जन्म और तीर्थ (कर्म) की अपेक्षा ब्राह्मणादिक जातियों की व्यवस्था दो प्रकार से है, यही आशय महापुराण में भगवज्जिनसेन का भी है, यथाः—

तपः श्रुताभ्यां योहीनो जातिब्राह्मण एव स :

अर्थात्—तप श्रुत आदि कर्म काण्ड से रहित ब्राह्मण केवल जाति ब्राह्मण है। आ० पु० पर्व ३८ श्लोक ४३।

और भी :—

विशुद्धावृत्तिरेषैषां षट् तयीष्टा द्विजन्मनां।
योऽति क्रामेदिमां सोऽज्ञो नाम्नैव न गुणैर्द्विजः॥
आ० पु० पर्व ३८ श्लोक नं० ४२।

अर्थात्—ऊपर कहे हुए वर्ण भेद से वर्णित षट् कर्तव्यों का जो उल्लंघन करता है सो केवल नाम (जाति) द्विज है, गुण (तीर्थ) द्विज नहीं।

और भी देखिये :—

असंस्कृतस्तु यस्ताभ्यां जाति मात्रेण सद्विजः।
आ० पु० पर्व ३९ श्लोक ४८।

अर्थात्—तप श्रुत से असंस्कृत केवल जाति से अर्थात् जन्म से द्विज है।

पुनश्च—द्विर्जातोहि द्विजन्मेष्टः क्रियातोगर्भतश्चयः।
क्रिया मंत्र विहीनस्तु केवलं नाम धारकः॥

अर्थात्—क्रिया और गर्भ की अपेक्षा जिनका दोबार जन्म होता है उन्हें द्विज कहते हैं; जो क्रिया और मंत्र से विहीन है वह केवल नाम मात्र ही का (जन्म का) द्विज है।

इस प्रकार एक दो नहीं किन्तु सैंकड़ों आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण जाति-व्यवस्था के विषय में दिये जा सकते हैं। यहां तो हमें केवल अमित गति आचार्य के भाव को स्पष्ट करना है।

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो गई कि जैनाचार्यों ने जन्म और कर्म दोनों की दृष्टि से जाति वर्णों का वर्णन किया है, इसलिये कहीं कभी किसी आचार्यने अर्पितानर्पित मुख्य गौण रूप से जन्म को महत्व दिया है और कहीं कर्म को। विशेषकर **जाति मद** का खण्डन करने के प्रकरण में उन्होंने जन्म को ही लक्ष्य कर के लिखा है। प्रमेय कमल मार्तण्ड में जो ब्राह्मणत्व का खण्डन है, वह जाति या वर्ण का खण्डन नहीं है, किन्तु ब्राह्मणत्व की व्यापकता कूटस्थता का खण्डन है, जाति मद के खण्डन को जातीय व्यवस्था का खण्डन समझना अपनी नगण्य बुद्धि का परिचय देना है।

यहां प्रकरण में अमित गति आचार्य का भी यही आशय है कि गुणों के नष्ट हो जाने से **"न गुणौर्द्विजः"** के आधार पर गुण जाति नष्ट हो जाती है न कि जन्म जाति, रविषेण आचार्य के "अनार्य माचरन् किंचिज्जायते नीच गोचरः" का भी अक्षरशः यही भाव है तथा **"ना जातिर्गर्हिता काचित् गुणाःकल्याण कारकं"** का भी ठीक यही आशय है।

आगे आपने जो लिखा है कि यदि थोड़ी देर के लिये दस्सों को पतित ही मान लिया जाय तो उन्हें सदा पतित ही रखना कहां की बुद्धिमानी है? (पृष्ट ६) तो इसका उत्तर यह है कि पतित तो शुद्ध हो भी सकता है परन्तु कलंकी का कलंक नहीं मिट सकता, जाति से गिराया हुआ कोई व्यक्ति प्रायश्चित विधान से शुद्ध हो सकता है परन्तु जाति संकर को शुद्ध करने वाला कोई प्रायश्चित कहीं है ही नहीं। जब तक दस्सा के शरीर में से अशुद्ध विजातीय परमाणु नहीं निकल जावेंगे तब तक

वह कैसे शुद्ध हो सकता है ? गङ्गा में स्नान करने पर भी खच्चर घोड़े नहीं हो सकते।

आगे आपने भगवज्जिनसेन के—

कुतश्चित् कारणाद्यस्य कुलंसम्प्राप्त दूषणं।
सोऽपि राजादि सम्यत्याशोधयेत्स्वकुलं तदा॥

श्लोक उधृत करके दस्सों की शुद्धि का फरमान जारी किया है परन्तु यह भी अविचारित रम्य है।

वर्ण लाभ क्रिया के पश्चात् आचार्य वर्णन करते हैं कि यदि कदाचित् किसी कारण से किसी व्यक्ति के कुल में कोई दोष लग गया हो तो वह भी राजादि की सम्मति से अपने कुल की शुद्धि कर ले, आज भी यदि समाज के किसी व्यक्ति से कोई दोष हो जाय तो पञ्चायत की व्यवस्थानुसार प्रायश्चित आदि करने पर वह शुद्ध हो सकता है पहले यह प्रायश्चित अर्थात् अपराध की शुद्धि राजादि की सम्मति से होती थी, परन्तु अब राजाओं के भ्रष्ट हो जाने के कारण उक्त व्यवस्था पञ्चायत के द्वारा होती है। उपर्युक्त श्लोक का यही भाव है न मालूम इसके द्वारा दस्सों की शुद्धि का मतलब आपने कैसे निकाल लिया? जाति संकर अर्थात् दस्सा व्यक्ति तो सैकड़ों संस्कार करने पर भी शुद्ध नहीं हो सकता। यथा :—

यत् संस्कार शतेनाऽपि नाजातिर्द्विजतां व्रजेत

(यशस्तिलके—सोमदेवः)

आगे आप लिखते हैं "ना जाति गर्हिता काचित् गुणाः कल्याण कारकं"। अर्थात् कोई जाति हीन नहीं है गुण

कल्याण करने वाले हैं—इस नय विवक्षा के कथन को आप प्रमाण बनाना चाहते हैं, शास्त्रों में ऐसे बीसों उदाहरण हैं जिन से आप को पता लगेगा कि अनेक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नरक भी गये हैं अतएव गुणों के अभाव में जाति मात्र ही से कुछ लाभ नहीं हुआ। परन्तु इस का यह भी अर्थ नहीं है कि जाति का कुछ महत्व ही नहीं रहा। क्योंकि विपक्ष में आप किसी दस्से वा जाति संकर व्यक्ति का एक भी ऐसा दृष्टान्त उपस्थित नहीं कर सकते जिस ने केवल अपने गुणों के कारण ही मोक्ष को प्राप्त कर लिया हो।

इस के आगे जो आपने—"वर्णा कृत्यादि भेदानां...." यह उत्तरपुराण का श्लोक उधृत किया है, वह अपने को बड़ा समझने वाले ब्राह्मणों के जात्यभिमान को खण्डित करने के लिये लिखा है इस का यह आशय नहीं है कि ब्राह्मणादि जातियां अशुद्ध ही हैं। संशय में एक कोटि नहीं हुआ करती जिस प्रकार अशुद्धि की संभावना है उसी प्रकार इन के सदैव शुद्ध होने की भी संभावना हो सकती है। इस प्रकार की शुद्ध जातियां अनादि काल से हैं और अनन्त काल तक चली जायेंगी जिन में त्रेसठ श्लाका महापुरुष तथा मोक्षगामी अनेक जीवों का जन्म होगा। दुःख है कि आचार्य के नय विवक्षा के कथन को आप ने ग़लत समझा, जाति मद के खण्डन को आप जाति का खण्डन क्यों समझ बैठते हैं ? इस के आगे आप लिखते हैं कि :—

"मनोवाक्कायधर्माय मताः सर्वेऽपि जन्तवः" ।

अर्थात्—सभी जीव मन वचन कर्म से धर्म पालन करने के अधिकारी हैं।

इस की आड़ में आप जो दस्सों का पूजाधिकार सिद्ध करना चाहते हैं सो इस पंक्ति से सिद्ध नहीं हो सकता।

सोमदेव के उपरोक्त वाक्य का तो यही आशय है कि मन बचन काय से समस्त प्राणी धर्म धारण कर सकते हैं, ठीक है। परन्तु इसका यह अर्थ कैसे हो गया कि दस्से भी पूजन कर सकते हैं ?

मन बचन काय से हर एक जन्तु धर्म धारण कर सकते हैं, परन्तु नारकी अस्पर्श भंगी, चमार, यवन मुसलमान, तिर्यञ्च आदि भी तो जन्तु ही हैं। तो क्या इस वाक्यसे वे भी पूजन कर सकते हैं ? मुनि बन सकते हैं ? मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ? धन्य है आप की न्याय-तीर्थता ! जो अभी पदार्थ के सामान्य विशेष धर्म को भी नहीं समझते न मालूम वे किस बुते पर प्राचीन आम्नाय में टांग अड़ाने लगते हैं !!

युक्ति-विचार

सहारनपुर की धर्म निष्ठ पञ्चायत ने दस्सों के पूजा विरोध में कुछ युक्तियां दी हैं, निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने पर युक्तियों का प्राबल्य भली भांति समझ में आजाता है। परन्तु पंडित परमेष्ठीदासजी ने उनका जो निराकरण किया है अब हम उन्हीं पर विचार करते हैं।

युक्ति (१) मुनि और श्रावकों की एक ही क्रिया भिन्न भिन्न फल देती है।

पं० परमेष्ठीदास जी का निराकरण—मुनि और श्रावकों की अनेक ऐसी क्रियाएं हैं जिन्हें दोनों कर सकते हैं जैसे दर्शन स्वाध्यायादि, मुनि आरम्भ त्यागी हैं इस लिये पूजन नहीं करते किन्तु श्रावक चाहे दस्सा हो या बीसा सभी आरम्भी क्रियाएं करते हैं इसलिये सभी पूजा कर सकते हैं।

विचार—वास्तव में उपरोक्त युक्ति अक्षरशः सत्य है कि एक ही क्रिया एक को पुण्य और दूसरे को पाप बन्ध का कारण है, इसका निराकरण करते हुए पं० परमेष्ठीदास जी लिखते हैं कि "**जो आरम्भ करते हैं वे पूजन भी कर सकते हैं**" दस्से भी आरम्भ त्यागी हैं इसलिये वे भी पूजन कर सकते हैं।" इस प्रकार दस्सों के पूजन पक्ष में आपने आरम्भ हेतु दिया है परन्तु यहां हमारा कहना है कि दस्से ही क्यों आरम्भ तो भङ्गी चमार भी करते हैं तो क्या वे भी पूजन कर सकते हैं? यदि कहा जाय कि उनके लिये शास्त्रों में आज्ञा नहीं है तो शास्त्रों में तो दस्सों के लिये भी आज्ञा नहीं है। (देखो धर्म संग्रह श्रावका-

चार और पूजासार स्मृतिसार ग्रन्थ श्लोक नं० १४३ व १८) और जब आप आरम्भ ही को पूजा का हेतु मान रहे हैं तब इन शास्त्र प्रमाणों का भी समन्वय कैसे हो सकेगा ? इस लिये आपकी इस मन कल्पित युक्ति का कुछ मूल्य नहीं हुआ यदि आप कहें कि भङ्गी चमार भी पूजन कर सकते हैं तो अपने इस प्रतिज्ञा वाक्य को सिद्ध करने के लिये कोई आगम वाक्य उपस्थित कीजिये, **आपका आरम्भ हेतु तो पूजा का अवि-नाभावी नहीं है** क्योंकि जहां आरम्भ नहीं है ऐसे देवादिकों में भी पूजन विधान पाया जाता है, इस लिये आपका आरम्भ हेतु विरुद्ध अनैकान्तिक हेत्वाभास प्रमित है अतः हमारी पहली युक्ति दृढ़ है और आप से इसका निराकरण नहीं हो सका।

दूसरी युक्ति

"आगम सार्णीत मर्यादा के विरुद्ध क्रिया करना जिनाज्ञा का उल्लंघन करना है।"

हमारी दूसरी युक्ति के निराकरण में तो आप बिल्कुल ही बहक गये हैं इसके उत्तर में आपने सिर्फ गुजरात प्रान्त के कुछ भाइयों का दृष्टान्त पेश किया है, परन्तु इसके उत्तर में आपको समझ लेना चाहिये कि यदि दशा और बीसा हूमड़ मिलकर पूजन करते हैं तो इसका यह अर्थ कैसे होगया कि सभी दस्सों को पूजन करने की शास्त्रीय आज्ञा है ? कल को आप कहने लगें कि "दक्षिण की सैतवाल जाति में विधवा विवाह होता है इस लिये सभी जैनियों में विधवा विवाह होना चाहिये"।

जिस प्रकार दक्षिण की जाति विशेष की यह प्रवृत्ति अमान्य है उसी प्रकार गुजरात प्रान्त की भी शास्त्र विरुद्ध यह प्रवृत्ति अमान्य है।

यदि गुजरात प्रान्त के कुछ दस्से लोग पूजन करते हैं तो यह उधर की पञ्चायत की कमजोरी और फूट का नमूना है। इससे दस्सों को पूजाधिकार कैसे सिद्ध होगया? इधर खतौली का दस्सा बीसा केस समाज में सुप्रसिद्ध है जिसमें कोर्ट द्वारा यह फ़ैसला दिया गया था कि दस्सों को बीसों के मन्दिर में पूजा का अधिकार नहीं है !!! किसी देश विशेष के रिवाज को आप आगम प्रमाण समझ बैठे धन्य है आपको न्यायतीर्थता।

तीसरी युक्ति

जिनागम में जाति पतित अकुलीन आदिकों द्वारा पूजा करने का निषेध है।

इसका निराकरण करते हुए आप लिखते हैं कि यदि आप के इस निषेध वाक्य को थोड़ी देर के लिये सत्य भी मान लिया जाय तो यह कहना कठिन है कि सभी दस्सा भाई जाति पतित और अकुलीन होते हैं गुजरात प्रान्त में दस्साओं को जाति पतित और अकुलीन कहने पर लेने के देने पड़ेंगे ....।

विचार—

जब आप इस निषेध वाक्य को थोड़ी देर के लिये सत्य मान रहे हैं तब कम से कम थोड़ी देर के लिये तो इस वाक्य के आधार पर आप को भी दस्सों की पूजा का निषेध करना ही चाहिये। आपने जो यह लिखा है कि गुजरात प्रान्त के दस्सों को दस्सा कहने पर लेने के देने पड़जायेंगे, इसके उत्तर में आप को खतौली सरधना और आगरा के दृष्टान्त भूल नहीं जाना चाहिये, यदि आप उन मुक़दमों की फाइल देखें तो आपको पता लगजायगा कि किसको लेने के देने पड़े हैं ? आगरे का

मामला तो बिल्कुल ही ताजा है जिसमें पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री जयपुर के मुक़ाबले में आपके गुरु पं० दरबारीलाल जी न्यायतीर्थ चारों खाने चित्त आये थे !!!

इसके आगे आपने :—

ब्रह्मघ्नो अथवा गोघ्नो तस्करः सर्व पापकृत् ।
जिनांघ्रि गन्ध सम्पर्कान्मुक्तो भवति तत्क्षण ॥

पूजासार के इस श्लोक द्वारा दस्सों को पूजाधिकार सिद्ध करना चाहा है परन्तु समझ में नहीं आता कि इस श्लोक में दस्सों को पूजाधिकारी सिद्ध करने वाला कौनसा पद है ? ब्रह्म हत्याकारी, गो हत्याकारी, चोर सब पाप करने वाला, पापी ही है जातिसंकर नहीं, पापी शुद्ध हो सकते हैं परन्तु जातिसंकर को शुद्ध करने की शक्ति पूजामें भी नहीं है और न श्लोक में कोई ऐसा पद ही है जिससे जातिसंकर अर्थात् दस्से का पूजाधिकार सिद्ध हो सके।

यह ठीक है कि साधारण जनता संस्कृत नहीं जानती, परन्तु कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा वाली कहावत के अनुसार कुछ भी श्लोक लिखकर जनता को धोखा देना छल ही नहीं महा पाप है !!!

इस श्लोक का अर्थ तो यह है कि "ब्रह्म गो घाती, अथवा चोर या अन्य पाप कार्य करने वाला भगवान की पूजा के सम्बन्ध से तत्क्षण शुद्ध होजाता है" इससे आपने दस्सों का पूजाधिकार कैसे निकाल लिया ? आपको मालूम होना चाहिये कि उत्तम वर्णों में जन्म लेने वाले मनुष्य भक्षी सौदास तक मोक्ष गये हैं और जा सकते हैं परन्तु प्रतिदिन स्नान जाप आदि कर्म

करने वाले शूद्र नहीं, भावार्थ यह है कि जहां मोक्ष जाने की या पूजन करने की पात्रता है वे ही लोग अपने दुष्कर्म छोड़ने पर मोक्ष प्राप्त या पूजनादि कर सकते हैं। गड्ढे में गिरे हुए मनुष्य को हस्तावलम्बन देकर निकालना धर्म है परन्तु गड्ढे में गिरा हुआ मनुष्य यदि ऊपर वाले का हाथ पकड़ कर उसे भी उसी गर्त में गिराना चाहता हो तो वहां से बचकर निकल जाना ही धर्म है! हम पं० परमेष्ठीदास जी से पूछते हैं कि यदि कोई अन्त्यज उनके समक्ष मुनि होना चाहे तब उसके पाप काटने के हेतु वे उसे मुनि बन जाने देंगे? संभव है आप अपने व्यक्तित्व रूप से उसे न रोकें परन्तु धर्म शास्त्र तो उसे मुनि बनने से रोकने को ही धर्म कहता है। यही दृष्टान्त दस्सों के सम्बन्ध में समझना चाहिये।

चौथी युक्ति

यदि मुनि भी अपने पदस्थ के प्रतिकूल क्रिया करै तो उसको भी रोकना प्रत्येक धर्मज्ञ का कर्तव्य है—

इसके निराकरण में आपने लिखा है—"यह ठीक है किन्तु दस्साओं द्वारा पूजा की जाना पदस्थ के प्रतिकूल नहीं है क्योंकि दस्सा बीसा दोनों हो शुद्ध हैं—यदि दस्सों को पतित भी मान लिया जाय तो भी जिन पूजा करना उनके पद के अनुकूल है।

यथा :—जिन पूजा कृता हन्ति पापं ना ना भवोद्भवं।
बहु काल चितं काष्टराशिं वह्निमिवाखिलं॥

अर्थात्—जिन पूजा करने से इस जन्म ही के नहीं किन्तु जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट होजाते हैं।

विचार—

इसके निराकरण में जो आपने लिखा है कि दस्सा बीसा दोनों ही शुद्ध हैं सो किस आधार से लिखा है? कहीं का कोई श्लोक, गाथा, सूत्र, वार्तिक, कारिका, छन्द कुछ तो उधृत करते! दस्से यदि बीसों की तरह शुद्ध ही हैं तो दस्से शब्द का व्यवहार ही क्यों प्रचलित हुआ? बिना किसी प्रमाण के जो चाहे अन्ट शन्ट लिखने में आप पूर्ण सिद्ध-हस्त हैं मगर जब आपसे कुछ प्रमाण मांगा जाता है तब आप बगलें झांकने लगते हैं! आश्चर्य है कि न्यायतीर्थ होने पर भी आप कार्योपलब्धि रूप हेतु को बिल्कुल ही भूल गये! जिस प्रकार वर्षा से बादलों का या पुत्रसे विवाह का अनुमान कर लिया जाता है उसी प्रकार दस्सा इस शब्द से उनकी अशुद्ध वंश परम्परा का अनुमान हो जाता है।

इसके आगे जो आपने पूजा के माहात्म्य का वर्णन करने वाला धर्म संग्रह श्रावकाचार का एक श्लोक उधृत किया है उससे भी आपका मनोरथ सिद्ध नहीं होता, जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान के वचन भी अभव्य को भव्य नहीं बना सकते उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान की पूजा भी दस्सों का कलङ्क नहीं मिटा सकती? पूजा पाप के नाश करने वाली है, ठीक है, परन्तु निधत्त, निकाचित बन्ध के स्वरूप को बदलने की शक्ति पूजा में भी नहीं है।

पांचवो युक्ति

जिन्हें पूजाधिकार प्राप्त नहीं है वे भाव पूर्वक दर्शन करके ही पुण्य बन्ध कर सकते है।

निराकरण—इस युक्ति द्वारा आप दस्साओं को पूजाधिकारी न मानकर भाव पूर्वक जिन दर्शनादि की सलाह दे रहे हैं जिन्हें आप भाव पूजा की अनुमति दे रहे हैं उन्हे द्रव्य पूजा से क्यों रोकते हैं ?

विचार—

दुःख है कि ऐसी ऐसी स्थूल बातें भी आपके दिमाग शरीफ में नहीं आई ! असच्छूद्र मुनियों को आहार दान नहीं दे सकता तो क्या भाव से वह उसका अनुमोदन भी नहीं कर सकता ? असच्छूद्र मुनि नहीं हो सकता तो क्या वह अपने भावों में मुनि होने के भाव भी नहीं ला सकता, रजस्वला मन्दिर नहीं जा सकती तो क्या भावों में भी जिन देव का स्मरण भी नहीं कर सकती ? भाव यह है कि जिस प्रकार वस्तु में सामान्य विशेष ये दो धर्म होते हैं उसी प्रकार क्रिया में भी द्रव्य और भाव ये दो भेद होते हैं, भाव में आत्मिक शुद्धि और द्रव्य में शारीरिक शुद्धि की अपेक्षा है, दस्सों का शरीर पिण्ड अशुद्ध है क्योंकि उसका उपादान कारण रजोवीर्य अशुद्ध है इसी लिये वे भाव पूजन ही कर सकते हैं, अन्यथा फिर दस्सों के मुनि होने आचार्य बनने और अरहन्त पद प्राप्त करने में भी क्या बाधा आसकती है ? यदि कहा जाय कुछ नहीं; तो यह जिनाज्ञा का लोप है क्योंकि जिसे मुनियों को आहार दान देने का अधिकार

नहीं उसे मुनि बनने का अधिकार कैसे हो सकता है? दस्सों को आहार दान देने का निषेध है, यह बात त्रिलोकसार की गाथा द्वारा स्पष्ट कर दी गई है। मुनि बनने के लिये सप्त परमस्थानों में वर्णित सज्जातित्व की सबसे पहिले आवश्यक्ता होती है, आचार्य भी बिना जाति कुल का निर्णय किये किसी को दीक्षा नहीं देते, परन्तु इतना होते हुए भी दस्सा अपने भावों में वैराग्य भावनाओं द्वारा मुनि पद की भावना भा सकता है, इसी प्रकार वह द्रव्य पूजा के अधिकार बिना भाव पूजन द्वारा पुण्योपार्जन कर सकता है सहारनपुर के धार्मिक पञ्चों के "ही" यही अभिप्राय है।

छठी युक्ति

गुणों की समानता ही में अधिकार की समानता है।

निराकरण—गुणों की समानता तो एक बीसा की दूसरे बीसा के साथ भी नहीं है, दक्षिण में चतुर्थ आदि पूजन करते हैं, घोड़े की नस्ल शुद्धि से ही उसकी क़ीमत हज़ार रुपया नहीं होजाती।

विचार—

गुणों की समानता में ही अधिकार की समानता हो सकती है इस सुन्दर युक्ति का समाधान न बनने पर आपने जो उसका उपहास किया है इससे दस्सों का पूजाधिकार सिद्ध नहीं हो सकता। आप लिखते हैं कि गुणों की समानता तो एक बीसा की दूसरे बीसा के साथ भी नहीं है।"

यहां शायद आपने गुणों का मतलब लम्बा चौड़ा काला गोरा धनवान निर्धन, मूर्ख विद्वान, हल्का भारी, बूढ़ा जवान, आदि समझ लिया है इसी लिये तो आप लिख रहे हैं कि गुणों की समानता तो एक बीसा की दूसरे बीसा के साथ भी नहीं" यदि गुणों का मतलब आप जाति कुल शुद्धि समझ लेते तब आपको पता लग जाता कि एक बीसा गुणों में दूसरे बीसा के समान है इसीलिये सभी बीसा पूजनादि के अधिकारी हैं।

परन्तु गुणों का जाति कुल शुद्धि अर्थ समझने पर आपको व्यर्थ में काग़ज़ काले करने या अपने और दूसरों का समय नष्ट कराने का मौक़ा न आता॥

इसके आगे आपने जो लिखा है कि दक्षिण में चतुर्थ आदि पूजन करते हैं" तो महाशय जी! यह देश विशेष का रिवाज है नकि धर्म शास्त्र की आज्ञा।

इसका उत्तर तो यह है चतुर्थ सेत वाला आदि ऐसी जातियों को जिनमें विधवा विवाह होता है हर्गिज द्रव्य पूजन नहीं करना चाहिये धर्म शास्त्र के मुक़ाबले किसी जाति देश विशेष का रिवाज कुछ मूल्य नहीं रखता।

घोड़े के नस्ल वाले दृष्टान्त का खंडन करते हुए आप लिखते हैं कि मनुष्यों में कीमती और कम कीमती घोड़ों में जैसा भेद नहीं है यदि मान भी लिया जाय तो किसी दस्सा को जब ५००) रु० मासिक वेतन मिलता है तब किसी बीसा को १० रु० मासिक भी मिलना कठिन होजाता है।

बढ़िया नस्ल वाला घोड़ा अधिक मूल्य का होता है इसमें कुछ विवाद नहीं होना चाहिये।

वढ़िया नस्ल वाला दुबला पतला भी घोड़ा मोटे ताज़े गधे से हज़ार जगह अच्छा होता है यदि मोटे ताजे पन ही की क़ीमत होती तो घोड़े से गधे की क़ीमत ज्यादह होनी चाहिये थी ब्राह्मण चत्रिय वैश्य वर्ण के हीरों के मुक़ाबले शूद्र वर्ण का हीरा कम क़ीमत होता है। इमीटेशन कितना भी चमकदार क्यों न हो शुद्ध पुखराज को नहीं पा सकता इन सब दृष्टान्तों से शुद्ध नस्ल की महता भली भांति समझ में आजाती है।

यदि किसी दस्से को ५००) मासिक मिलने लगें तो क्या उस की नस्ल बदल गई ? यहां आपको एक नीतिकार का यह बचन स्मरण करना चाहिये कि:—

"स्वर्णाद्रि भृंगाग्रमधिष्ठितोऽपि काको वराकः खलु काक एव—

अर्थात्—सोने के सुमेरु पहाड़ पर बैठने वाला कौवा, बेचारा कौवा ही है, मानसरोवर झील में स्नान करने पर कौवा कभी हंस नहीं होसकता इसलिये रुपये के बल पर किसी की नस्ल नहीं बदल सकती। ५००) रु० क्या दुनिया भर की सम्पत्ति का मालिक बनने पर भी दस्सा दस्सा ही रहेगा।

सातवीं युक्ति

हम यह अवश्य मानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य ही क्या तिर्यञ्च भी जिन देह धारण कर सकता है किन्तु अपनी २ मर्यादा के अन्दर ही रहकर।

निराकरण—मैं भी तो यही कहता हूं कि तिर्यञ्च मुनि नहीं

होसकता मैं आगे चलकर बतलाऊंगा कि अनेक दस्सों ने मुनि दीक्षा तक ली थी ”।

विचार—आपका यह लिखना "कि मैं आगे चल कर बतलाऊंगा कि अनेक दस्सों ने मुनि दीक्षा ली है” सरासर झूंठ है आपने जो कथा दृष्टान्त दिये हैं उनमें एक भी दस्सा नहीं था यह बात हम भी प्रकरणानुसार आगे चल कर प्रमाणित करेंगे।

आपने तिर्यञ्चों (मेंडकों) आदि के दृष्टान्त देकर दस्सों को पूजाधिकारी बताना चाहा है परन्तु आप एक भी ऐसा दृष्टान्त नहीं बता सकते कि किसी भी तिर्यञ्च ने अष्ट द्रव्य से पूजन की हो। दूसरी बात यह है कि अनेक मनुष्य तिर्यञ्चों से भी गये बीते हैं मेंढक, हाथी, घोड़ा, गाय भैंस आदि तिर्यञ्च ही हैं परन्तु इन को स्पर्श करने पर स्नान करने की आवश्यकता नहीं है जबकि भङ्गी चमार ही नहीं किन्तु शुचि हीन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के स्पर्श करने पर स्नान करने की आवश्यकता है और शास्त्रों में इसका विधान है मुनि स्नान के त्यागी होते हैं परन्तु कदाचित् उनका स्पर्श चाण्डालादि से हो जाय तो उन्हें भी स्नान करना आवश्यक बतलाया है यथाः—

संगे कापालिकात्रेयी चाण्डाल शवरादिभिः।
आप्लुत्य दण्डवत्सम्यक् जपेन्मत्र मुपोषितः॥

यशस्तिलके सोमदेवः २९१

अर्थात्—यदि चाण्डाल अघोरी आदि से स्पर्श हो जाये तो दण्ड स्नान करै और उपवास रख कर महा मंत्र का जाप करै।

परन्तु मुनियों का स्पर्श यदि उपरोक्त तिर्यंच पशुओं से हो जाय तो उन्हें स्नानादि की आवश्यक्ता नहीं है बल्कि तिर्यञ्च

गाय भैंस आदि का दुग्ध घृत मुनिगण आहार में भी ग्रहण करते हैं, इस प्रकार विचार करने पर अनेक शुचि हीन मनुष्यों से तिर्यञ्चों की श्रेष्ठता सिद्ध होती है, इसलिये भले ही मेण्डक आदि तिर्यञ्चों ने भगवान् की भक्तिवश पुष्प आदि द्वारा उनकी उपासना की हो परन्तु तिर्यञ्चों के इन दृष्टान्तों से भी दस्सों का पूजाधिकार सिद्ध नहीं होता।

आठवीं युक्ति

शूद्र क्षुल्लक तक ही हो सकता है और लोहे के पात्र को रख कर अपनी जाति को नहीं छिपा सकता, स्त्री पांचवें गुण-स्थान तक ही चढ़ सकती है इस प्रकार धर्म की मर्यादा नियत है।

निराकरण—समझ में नहीं आता कि सहारनपुर के अज्ञात नाम लेखक ने ऐसी असम्बद्ध बातों से क्या सिद्ध करना चाहा है..............।

विचार--

यह इतनी स्पष्ट और दृढ़ बात भला आप की समझ में क्यों कर आ सकती था ? **"Where ignorance is bliss it is fooly to be wise"** **"जहां मूर्खता में ही आनन्द है वहां बुद्धिमत्ता दिखाना महा मूर्खता है"** शेक्सपीयर की यह उक्ति अपने अक्षरशः चरितार्थ की है, अन्यथा यहां कौन से ऐसे अरबी फ़ारसी के शैर हैं जो आप की समझ में नहीं आये, सीधी बात है—शूद्र मुनि नहीं हो सकता शूद्र पूजन नहीं कर सकता स्त्री पांचवें गुण स्थान तक ही चढ़ सकती है ! क्या ये साधारण बातें भी आप की समझ में नहीं आईं ?

आप लिखते हैं कि धर्म संग्रह श्रावकाचार तथा पूजासार में—ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो **शूद्रो वाद्यः सुशीलवान् दृढ व्रतोदृढाचारा सत्यशौच समन्वितः।** प्रमाण द्वारा शूद्रों को पूजाधिकारी बतलाया है. यह अर्थ आप ने श्लोक में आये हुये "शूद्र" पद को देखकर किया है, परन्तु शूद्र से पहले यदि **आद्यः** शब्द पर आप विचार कर लेते तो आप को यह लिखने का साहस न होता, खैर................।

"आद्यः" पद का अर्थ सत् शूद्र है न कि शूद्र, इस 'सत्शूद्र' का खुलासा, जिस धर्म-संग्रह श्रावकाचार का आपने प्रमाण दिया है उसी में है—यथा—

ते सच्छूद्रा असच्छूद्रा द्विधाशूद्राः प्रकीर्तिताः।
येषां सकृद्विवाहोस्ति ते चाद्यापरथा परे॥

परन्तु न मालूम आप की दृष्टि इधर क्यों नहीं गई? इस सत्शूद्र का खुलासा निम्नस्थ श्लोकों में निम्न प्रकार से किया गया है:—

पशु पाल्यात्कृषेः शिल्पाद्वर्तन्ते तेषुकेचन।
शुश्रूषन्ते त्रिवर्णीं ये भाण्ड भूषाम्बरादिभिः॥
ते सच्छूद्रा असच्छूद्रा द्विधाशूद्रा प्रकीर्तिताः।
येषां सकृत् विवाहोस्ति ते चाद्या परथापरे॥

(धर्म सं० श्रा० २३२ व २३३)

तेषु त्रिवर्णेषु केचन ये भाण्ड भूषाम्बरादिभिः त्रिवर्णीं शुश्रूषन्ते तेसच्छूद्राः भवन्ति.............

अर्थात्—इन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में का ही जब कोई व्यक्ति इन्हीं त्रिवर्णियों की अलंकार भूषा आदि सेवा करता है वह सत्शूद्र है...... ..। क्योंकि वह त्रिवर्णों में से ही किसी वर्ण का है इस लिये तो सत् है और उस ने अपना पेशा शूद्रों का कर रक्खा है इस लिये कर्म की अपेक्षा) शूद्र है, दोनों बात होने से "सत् चासौशूद्रः सच्छूद्रः" यह सत् शूद्र का समासान्त विग्रह है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया है कि पूजकों में वर्णित शूद्र का अर्थ सत् शूद्र या आदि शूद्र है न कि शूद्र, शूद्र से पहले पड़ा हुआ सत् शब्द सज्जातित्व ही का वाचक है।

कुमुदचन्द्र संहिता में इसी आशय को निम्न श्लोकों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

सकृद्विवाह नियता, व्रतशोलादि सद्गुणाः
गर्भाधानाद्युपेता ये सच्छूद्राः कृषिजीविकाः

अणुव्रत पुरा धृत्वा महाव्रत पदोद्यताः
द्विजातयास्त्रिवर्णोत्था शूद्रा येणुव्रतार्चिताः

पात्र दानं च सच्छूद्रैः क्रियते विधि पूर्वकैः
शी लोपवास दानार्चाः सच्छूद्राणां क्रिया व्रतैः

अर्थात्—जिनके वंश में कभी पुनर्विवाह नहीं हुआ व्रत शीलादि गुणों से सम्पन्न हों जिनके गर्भाधानादि समस्त संस्कार नियम पूर्वक होते हों जो मूल गुणादि अणु व्रत के धारण करने वाले हों तथा महाव्रत धारण करने में उद्यत हों जो शील उपवास दान पूजादि समस्त पुण्य कर्म करते हों ऐसे द्विजन्मा ब्राह्मण

क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्णों में से कोई भी जो हिंसादिक के कारण नीच कर्म शूद्रों का कर्म करने लगे हैं वे सच्छूद्र हैं।

इस प्रकार तीन वर्णों में जिनकी आजीविका अधम है वे सब कर्म की अपेक्षा सच्छूद्र माने गये हैं। **सच्छूद्र शूद्रों का उपभेद नहीं है** इस प्रकार आपके इस प्रमाण से भी शूद्रों अथवा दस्सों का पूजाधिकार सिद्ध नहीं होता।

इसके आगे जो आपने गौतम चरित्र की तीन कन्याओं का दृष्टान्त दिया है सो........**उनको शूद्र कहीं नहीं लिखा यह मिलावट आपने अपना असत्पक्ष सिद्ध करने के लिये मिलाई है !** दुःख है कि अपने को पण्डित लिखने पर भी आप इस निन्दनीय मार्ग पर भी उतर पड़े !!!

गौतम चरित्र की दूसरी सन्धि के श्लोक नं० २८०–२८१ को देख जाइये आपका पता लग जायगा कि वे कन्याएं कौन थीं ? उनकी जाति "**कुटुम्बा बतलाई गई है दक्षिण में आज भी यह जाति पाई जाती है जो क्षत्रियों का ही एक उपभेद है।** क्षत्रियों वैश्यों ब्राह्मणों में अनेक लोग कबूतर पालते हैं, बकरी पालते हैं, तोते पालते हैं, अण्डों के जघन्य कुत्सित व्यापार के लिये मुर्गी भी पालते हैं, परन्तु कबूतर, तोते, मुर्गी बकरी पालने से ही या नीच आदमियों के मोहल्ले या गांव में रहने से ही सभी नीच या शूद्र नहीं हो जाते ! अतः आपका यह कहना कि वे कन्याएं शूद्र वर्ण की थीं और उनके पूजन के दृष्टान्त से दस्सों का पूजाधिकार सिद्ध करना केवल प्रलाप मात्र ही है।

अन्त में आपकी यह युक्ति तो बड़ी विलक्षण है कि जो निर्जरा के कारणों को कर सकता है वह बन्ध के कारणों को क्यों नहीं कर सकता ? इसके लिये तो पहले आपको यही विचार करना चाहिये था कि जो एक देश निर्जरा के कारणों को कर सकता है वह निर्जरा करते हुए भी (शूद्र क्षुल्लक वा आर्यिका की तरह) पूर्ण निर्जरा क्यों नहीं कर सकता ? जब निर्जरा करने वाला भी पूर्ण निर्जरा नहीं कर सकता तब बन्ध वाले की तो बात ही क्या है ?

असंयत सम्यक्दृष्टि नारकियों के तिर्यञ्चों के चाण्डालों के कर्मों की निर्जरा होती है परन्तु निर्जरा के अधिकारी होने पर भी जैसे ये देव पूजनादि के द्वारा पुण्य बन्ध नहीं कर सकते उसी प्रकार दस्से या शूद्र निर्जरा के अधिकारी होने पर भी देव पूजन नहीं कर सकते।

नवमी युक्ति

"अकुलीन विकलाङ्गी जाति पतित बौने रोगी इत्यादि को जिन पूजा करने का निषेध है।"

निराकरण—इस से भी दस्साओं का पूजाधिकार नहीं छीना जा सकता क्यों कि ये बातें बीसों में भी हो सकती हैं, दूसरी बात यह है कि ये निषेधाज्ञा आप किस शास्त्राधार से बतला रहे हैं ?

विचार—जब दस्साओं को पूजाधिकार ही नहीं तब छीनने की बात बिल्कुल व्यर्थ है, जिन बीसों में बौनेपन इत्यादि के दोष हैं तो उन्हें भी पूजन करने का निषेध है ! इस से तो आप

को जैन शास्त्रों की निष्पक्ष कथनी पर अभिमान होना चाहिये कि उन में बीसा होने मात्र ही का कोई एकान्तिक पक्ष नहीं है। आपका यह लिखना कि "निषेधाज्ञा किस शास्त्राधार से लिखी गई है"। आपके थोड़े अध्ययन का सूचक है! जिस धर्म संग्रह श्रावकाचार के पूजकाचार्य सम्बन्धी—"नाधिकाङ्गो न हीनाङ्गो न प्रलम्बो न वामनः"—श्लोक आपने उधृत किया है उस से ३, ४ श्लोक ऊपर सामान्य पूजक के लक्षण को यदि आप देख लेते तो आप को पता लग जाता कि अकुलीन या जाति पतित व्यक्ति को पूजन की निषेधाज्ञा किस शास्त्राधार से लिखी गई है? अब आंख खोल कर देख लीजिये।

जात्याकुलेन पूतात्मा शुचिर्बन्धु सुहृज्जनैः।
गुरूपदिष्ट मन्त्रण युक्तः स्यादेष पूजकः॥

यह उसी धर्म संग्रह श्रावकाचार के सातवें अध्याय का १४३ वां श्लोक है इस में स्पष्ट बतलाया है कि जाति कुल समाज से पवित्र व्यक्ति हो जिन पूजक हो सकता है! धर्म संग्रह का हवाला देते हुए न मालूम आपकी दृष्टि इस श्लोक पर क्यों नहीं गई?

दसवों युक्ति

पांच वर्ष के बालक को, रजस्वला स्त्री को सूतक के समय कुटुम्बियों को पूजा से रोकना पाप नहीं है।

निराकरण—उसी प्रकार लेखक की दृष्टि में दस्साओं को पूजा से रोकना पाप नहीं है, मगर दस्साओं को पूजा से रोकने की कोई शास्त्रीय आज्ञा नहीं है।

विचार—"दस्साओं को पूजा से रोकने की कोई शास्त्रीय आज्ञा नहीं है" बार बार आपके ऐसा लिखने से शास्त्रीय आज्ञा का लोप नहीं हो जायगा। दस्साओं को पूजा करने की निषेधाज्ञा ऊपर धर्मसंग्रह श्रावकाचार और पूजा सार आदि ग्रंथों में बतला दी गई। अतः आपका यह लिखना कि शास्त्रों में दस्सों के पूजन सम्बन्धी निषेधाज्ञा नहीं है, स्पष्ट आगम का अवर्ण वाद है।

ग्यारहवीं युक्ति

"जैनी वही है जिसे जिन वचनों पर श्रद्धान हो"

विचार—इस के निराकरण में आपने फिर पहले वाली महारनी रटी है कि किसी शास्त्र में दस्सों की पूजा का निषेध नहीं है, परन्तु ऊपर शास्त्रीय प्रमाणों से यह बात भले प्रकार सिद्ध करदी गई कि दस्सों को पूजाधिकार नहीं है, आगे आप लिखते हैं कि "गुरु गोपालदास जी ने डंके की चोट यह सिद्ध कर दिया था कि दस्सों को पूजा करने का शास्त्रीय अधिकार है"। गुरु गोपालदास जी के प्रति हमारी श्रद्धा आप से किसी भी सूरत में कम नहीं है, हम में जो कुछ भी दो अक्षरों का टूटा फूटा ज्ञान है सो गुरुवर की ही कृपा का फल है, परन्तु आप को मालूम होना चाहिये कि इस असत् पक्ष के कारण ही गुरु जी की बढ़ी हुई प्रतिष्ठा पर पानी फिर गया था और इधर उधर प्रान्त में उनका वहिष्कार होगया था। स्वर्गीय न्याय दिवाकर पं० पन्नालाल जी के मुक़ाबले उन्होंने जबरदस्त शिकस्त खाई थी, और किसी भी शास्त्रीय प्रमाण से उन से दस्सों का पूजाधिकार सिद्ध नहीं हुआ था। आपका यह लिखना कि गुरु गोपालदास जी ने दस्सों का पूजाधिकार सिद्ध कर दिया था सरासर झूठ है। आपके और

समाज के भ्रम निवारणार्थ उस मुक़दमे के फैसले का कुछ अंश हम यहां उधृत करते हैं।

फ़ैसला

(देखो परिशिष्ट "क")

आशा है इस फ़ैसले से आपका भ्रम दूर हो गया होगा और आप को विदित हो गया होगा कि दस्सों के पूजाधिकार पक्ष में कोई प्रबल युक्ति अथवा शास्त्रीय प्रमाण नहीं है।

बारहवीं युक्ति

हीनाचारी को जाति से इस लिये प्रथक किया जाता है कि दूसरे पुरुष उसके संसर्ग से बचे रहें जैसे डाक्टर गले हुये अङ्ग को काट डालता है।

इस के निराकरण में आपने फिर पञ्चाध्यायी के स्थितिकरण अङ्ग वाले श्लोक का एक चरण उधृत कर दिया है परन्तु इस श्लोक का जो वास्तविक भाव है उस का खुलासा हम पहले कर चुके हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि कलंकी का कलंक किसी भी सूरत में नहीं मिट सकता। पहले आप आगम और उस की आज्ञा स्वयं समझने का कष्ट उठावें तब समाज का ध्यान उधर आकर्षित करें।

तेरहवीं युक्ति

जिनाज्ञा का उल्लंघन करके बलात् किसी से पूजन कराना धर्म नहीं है।

निराकरण—जिनाज्ञा का उलंघन पूजा से रोकने वाले कर रहे हैं या पूजन करने की शुभ भावना वाले। जैन धर्म किसी को भी पूजा करने से नहीं रोकता।

विचार—यदि कोई असच्छूद्र मुनि बनना चाहे तब जिनाज्ञा नुसार उसके रोकने में आप को पुण्य होगा या पाप जो आपका उत्तर है, वही हमारा भी है! जैन धर्म में समस्त विधान योग्यता नुसार ही बतलाये गये हैं, आगम में दस्सों को पूजन का निषेध है, अतः उनको उकसाने वाले लोग ही उत्सूत्र भाषी हैं! स्वेच्छाचारी हैं!! मर्यादालोपी हैं!!!

अब आपने जो शास्त्रीय उदाहरण के नाम से कुछ कथा दृष्टान्त उधृत किये हैं उन पर विचार किया जाता है।

शास्त्रीय उदाहरणों पर विचार

दस्सों को पूजाधिकारी सिद्ध करने के लिये आपने जो तद्भव मोक्ष गामी महापुरुषों तक को दस्सा लिखने का दुस्साहस किया है सो सर्वथा अक्षम्य है। परन्तु आज समाज की वह शोचनीय दशा है कि पूज्य पुरुषों का तिरस्कार उनके समक्ष होता है और समाज आंखें बन्द किये चुप चाप सहलेती है। इसे आगामी कालीन भयङ्कर परिस्थिति की सूचना के अतिरिक्त और क्या कहा जाय?

कर्ण, वीरक, ज्येष्ठा, मधु, चन्द्राभा, अञ्जन चोर, कार्तिकेय, रावण आदि इनमें से एक भी दस्सा नहीं था। समाज शासन को तोड़कर अपनी इच्छानुसार सधवा विधवा विजातीय चाहे जिससे विवाह करने पर जो सन्तान होती है वह दस्सा कही जाती है! क्या परमेष्ठीदास जी बतलावेंगे इन में शरीर पिण्ड किसका अशुद्ध था? दस्सा कौन था?

कर्ण—पाण्डु और कुन्ती के गन्धर्व विवाह से उत्पन्न हुए थे, उनके माता पिता वही थे जो युधिष्टिर भीम और अर्जुन के! आपने उन्हें दस्सा कैसे लिखा?

वासुदेव—ने व्यभिचार जात एणीपुत्र की कन्या से विवाह किया परन्तु वासुदेव का शरीर पिण्ड तो शुद्ध था! अतः उन्होंने नेमिनाथ भगवान की पूजा की!

सुमुख—का भी शरीर पिण्ड शुद्ध था वे दस्से नहीं थे।

चारुदत्त—का कुल तो बहुत ही पवित्र था!

ज्येष्ठा—भ्रष्ट होने पर भी पुनर्दीक्षित हुई इसका कारण यही था कि उसकी जाति शुद्ध थी! कुल निर्दोष था!! वह दस्सा नहीं थी!!!

रुद्र..........ों को दीक्षा नहीं दी जाती अपनी इच्छा से वे स्वयं मुनि होते हैं, उनका कुल जाति अशुद्ध है इसलिये उन्हें

शास्त्रानुसार दीक्षा लेने का अधिकार नहीं है परन्तु अपनी इच्छा से आगम की परवाह न कर वे स्वयं मुनि होते हैं इसलिये नियम से वे नरकगामी हो होते हैं। यदि आप दस्सों को रुद्रों की तरह नरक का पात्र बनाना चाहें तो पूजा ही क्या उन्हें मुनि बनने की भी सलाह दीजिये !!!

मधु-चन्द्राभा--ने अपने पापों का प्रायश्चित करके उदासीन होकर तब मुनियों को आहार दान दिया था, यह बात प्रद्युम्न चरित्र के ८वें सर्ग श्लोक नं० ४२ से ६१ तक लिखी हुई है....।

यथाः—राजा मधुचन्द्राभा के ऐसे बचन सुन कर बहुत ही लज्जित हुआ और उत्कृष्ट वैराग्य को प्राप्त होकर सोचने लगा हाय हाय मुझ पापी ने ऐसा जगन्निंद्य कर्म क्यों किया ? धर्मात्माओं को पर स्त्री हरण तथा पर स्त्री सेवन करना सर्वथा अनुचित है...........।

इस प्रकार जिस समय विषयाभिलाषा से विरक्त हो कर राजा मधु उत्तरोत्तर वैराग्य परिणति को प्राप्त होरहे थे उसी समय एक मुनिराज आहार लेने के लिये महल की तरफ आये...............पश्चात् राजा मधु ने उसी चन्द्राभा रानी सहित कुशीलादि पापों का त्याग करके आहार दान दिया !!

लेखक समझता होगा कि कौन शास्त्र खोलकर बैठेगा जो चाहे सो लिख मारा ! हम पूछते हैं कि एक न्याय तीर्थ पण्डित को इस प्रकार आगम का लोप करना, अर्थ का अनर्थ करना, अपनी और समाज की आंखों में धूल झोंकना क्या शोभास्पद है ? क्या

इसी मायाचारी और धोखे बाज़ी के बल पर लेखक सहारनपुर की पञ्चायत के युक्तयागम सिद्ध ट्रैक्ट का खण्डन करने चले हैं ? थोड़े से नाम के लिये इतना निंद्य प्रयास धिक्कार है।

इसी प्रकार अंजन चोर कार्तिकेय, सुदिष्टि रावण आदि में से एक भी दस्सा नहीं था !

सुदृष्टि—की स्त्री व्यभिचारिणी थी परन्तु मोक्षगामी, सुदृष्टि जौहरी (रत्न वैज्ञानिक) अपने ही वीर्य से उत्पन्न हुए थे ! आराधनासार कथा कोष में इसी बात को 'स्ववीर्येण स्वयं तदा' आदि श्लोक द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है उनको व्यभिचार जात लिखना भोली समाज की आंखों में धूल झोंकना है ।

इस प्रकार दस्साओं को पूजाधिकारी सिद्ध करने में आपने जो हेतु और दृष्टान्त दिये हैं, वे सब खंडित होजाते हैं !!!

समाज से दो शब्द

जैन धर्म एक असाधारण और जीव मात्र का सच्चा कल्याण कारी धर्म है। इस धर्म का धारण करने वाला आत्मा अपने इह लोक और परलोक का सुधार कर सकता है। अन्तिम मोक्ष ध्येय की सिद्धि भी इसी धर्म से होती है। जिस प्रकार सिंहनी का दूध सुवर्ण पात्र में ही ठहरता है उसी प्रकार इस धर्म का